Impact Factor 3.025

ISSN 2349-638x

Refereed And Indexed Journal

AAYUSHI INTERNATIONAL INTERDISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL (AIIRJ)

UGC Approved Monthly Journal

VOL-IV ISSUE-IX Sept. 2017

Address
· Vikram Nagar, Boudhi Chouk, Latur.
· Tq. Latur, Dis. Latur 413512 (MS.)
· (+91) 9922455749, (+91) 8999250451

Email
· aiirjpramod@gmail.com
· aayushijournal@gmail.com

Website
· www.aiirjournal.com

CHIEF EDITOR – PRAMOD PRAKASHRAO TANDALE

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - IV Issue-IX SEPTEMBER 2017 ISSN 2349-638x Impact Factor 3.025

ग्रामीण समाज और शिक्षा : ऐतिहासिक विकास की समझ

चन्दन श्रीवास्तव
शोधार्थी,
केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
chandan.edu@gmail.com

सारांश

भारत की लगभग तीन-चौथाई आबादी गांवों में बसती है, इसलिए ग्रामीण समाज एवं इसकी शिक्षा से सम्बंधित विमर्श अपने आप महत्वपूर्ण हो जाता है। पिछले दो सदी के दौरान, भारतीय ग्रामीण समाज का विकास कैसे हुआ, उसके प्रति किस प्रकार की अवधारणाएँ विकसित हुईं और इनसब से ग्रामीण शिक्षा किस तरह प्रभावित हुई। इन सवालों की पड़ताल करते हुए, प्रस्तुत आलेख में ग्रामीण समाज एवं इसकी शिक्षा के ऐतिहासिक विकास को समझने की कोशिश की गई है। आलेख के आरम्भ में ग्रामीण समाज एवं इसकी शिक्षा के प्रति औपनिवेशिक एवं देशज दृष्टिकोणों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, विभिन्न दृष्टिकोणों से ग्रामीण समाज के विकास को समझने का प्रयास भी किया गया है। आलेख के अंतिम भाग में ग्रामीण समाज एवं इसकी शिक्षा से सम्बंधित वर्तमान परिदृश्यों की चर्चा की गई है। कुल मिलाकर इस आलेख के माध्यम से यह मंतव्य प्रस्तुत किया गया है कि ग्रामीण समाज की शिक्षा का मुद्दा हमेशा से उपेक्षित रहा है। वर्तमान समय में इसकी स्थिति विशेष रूप से चिंताजनक है।

भारतीय ग्रामीण समाज के विकास को कई पहलुओं से देखा जा सकता है। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण पहलु इसके ऐतिहासिक विकास से सम्बंधित है। भारत के गांवों में समय के साथ-साथ क्या बदलाव आता रहा है? ग्रामीण समाज के प्रति किस तरह के दृष्टिकोण उभरते रहे हैं? और इन सब के संदर्भ में ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप किस तरह से विकसित होता रहा है? ये तमाम सवाल भारत के ग्रामीण समाज के वर्तमान परिदृश्य को समझने के लिहाज़ से बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत आलेख में इन्ही सब सवालों की पड़ताल की गई है। आलेख के माध्यम से भारतीय ग्रामीण समाज के पिछले दो सदियों के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया गया है, जिनके सहारे ग्रामीण शिक्षा के विकास को भी समझने की कोशिश की गई है।

यदि औपनिवेशिक काल में ग्रामीण समाज की बात करें तो पारम्परिक भारतीय सभ्यता को दर्शाने के लिए यहाँ के गाँवों को स्रोत के रूप में लिया गया और भारत को 'ग्राम गणराज्यों की भूमि' की छवि में प्रस्तुत किया गया। एक प्रमुख औपनिवेशिक मत के अनुसार, जिसे चार्ल्स मेटकाफ ने अपनी टिप्पणी में कहा था कि ''भारतीय गाँव लघु गणराज्य के रूप में रहे हैं जिनके अंदर लगभग वे सभी व्यवस्थाएँ है जिनकी उनको जरूरत है। वे बाहरी प्रभाव से अछूते हैं और तमाम राजवंशों, क्रांतियों के आने-जाने का उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है'' (कोहन, १९९०)। इस प्रकार औपनिवेशिक काल के विमर्श में भारतीय गाँवों को एक बंद समाज के रूप में देखा जाता रहा है। औपनिवेशिक मतानुसार, ऐसे बंद समाज की शिक्षा व्यवस्था बहुत सीमित और अव्यवस्थित प्रकृति की थी, जिसमें समाज का एक खास वर्ग ही शिक्षा के प्रति कुछ रूचि रखता था। जबकि, विभिन्न रिपोर्टो से यह जाहिर होता है कि ग्रामीण समाज में देशज शिक्षा का एक व्यवस्थित तंत्र था। जिसके अंतर्गत मूलतः चार प्रकार के स्कूल यथा-पाठशाला, टोल, मकतब और मदरसे की व्यवस्था थी। प्रारंभिक शिक्षा के छोटे स्कूल-पाठशाला और मकतब व्यापारी तथा खेतिहर वर्ग के लिए थे, वहीं टोल और मदरसे, उच्चतर शिक्षा के केन्द्र, धार्मिक तथा पढ़े-लिखे वर्गों के लिए थे (आचार्य, २०००)। यह अवश्य सत्य है कि विभिन्न गांवों में देशज व्यवस्था की जो स्थानीय शैक्षिक संस्थाएं थी, वे सभी स्वतंत्र अस्तित्व की थीं और उनके संचालन की कोई एक सार्वभौमिक व्यवस्था नहीं थी। फिर भी यह हैरान करनेवाली बात है कि उनके द्वारा दी जानेवाली शिक्षा एवं शिक्षण की प्रकृति में बहुत कुछ समानता थी (एडम व लांग, १८६८)। इसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय के गांव किसी बंद समाज के जैसे नहीं थे बल्कि आपस में सक्रिय रूप से जुड़े हुए थें। इसलिए, अपनी सत्ता को स्थापित करने के उद्देश्य से

औपनिवेशिक शासन द्वारा सबसे पहले भारतीय ग्रामीण समाज में विद्यमान इस देशज शिक्षा की व्यवस्था पर चोट किया गया और फिर शिक्षा की केन्द्रिकृत व्यवस्था आरम्भ हुई ताकि ग्रामीण शिक्षा पर नियंत्रण रखा जा सके। यदि औपनिवेशिक काल में ग्रामीण शिक्षा के प्रसार का विश्लेषण करें तो यह जाहिर होता है कि गाँवों को उच्चतर शिक्षा में गंभीरता से कभी नहीं लिया गया।

आगे जब स्वतंत्रता आंदोलन का दौर शुरू हुआ तो भारतीयगाँव राजनीतिक तौर पर भी सक्रिय हो गए। इसके कारण, भारतीय ग्राम्य समाज के संदर्भ में औपनिवेशिक मत के अलावा देशज मत भी निकलकर आए। तत्कालीन राष्ट्रीय विमर्शों में गाँवों के प्रति जो तीन प्रमुख राजनीतिक दृष्टिकोण रहे, उनकी छवि गांधी, नेहरू और अम्बेडकर के विचारों में मिलती हैं। जहाँ गांधी ने भारतीय गाँवों को 'विशुद्ध' माना, वहीं नेहरू के दृष्टिकोण से भारत के गाँव 'पिछड़ेपन' के प्रमुख स्रोत हैं। अम्बेडकर के अनुसार भारतीय गाँव स्वयं में उत्पीड़न के केन्द्र हैं, जहाँ जाति जैसी संस्था अपने अति नृशंस एवं अमानवीय रूप में विद्यमान है (जोधका, २०१२)। विश्लेषण करें तो इन तीनो दृष्टिकोणों में अंतर्विरोध है लेकिन इनमें इस दृष्टिकोण की अंतर्निहित सहमति दिखती है कि गाँव वैसे स्थान हैं जहाँ पर सामाजिक संगठन व सांस्कृतिक विश्वास के मौलिक स्वरूप का दर्शन होता है। अतः गाँव केवल वह स्थान नहीं है जहाँ लोग रहते हैं बल्कि इसका एक अपना स्वरूप है, जो भारतीय सभ्यता के बुनियादी मूल्यों को प्रदर्शित करता है (बेंते, १९८०)। इनसब का प्रभाव ग्रामीण शिक्षा के स्वरूप पर भी पड़ना स्वाभाविक है।

ग्रामीण समाज के प्रति कई समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किए गए हैं। गाँव को पृथक समाज के रूप में देखना उपनिवेशवाद से प्रभावित एक शुरूआती समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण था। स्वतंत्रता पश्चात गाँवों के अध्ययन करने के दृष्टिकोण में बदलाव आया जिसके कारण ग्रामीण समाज के प्रति बने पूर्ववर्ती मतों में भी परिवर्तन आया। गाँव के सामाजिक संबंधों, संस्थागत संरचना, मान्यताओं और मूल्य व्यवस्था को समझने वाले सिद्धांतों के निमार्ण हेतु समाजशास्त्रीय एवं नृजातीय अध्ययनों को किया जाने लगा। साठ के दशक में एम. एन. श्रीनिवास, एस. सी. दूबे, डी. एन. मजूमदार, आदि के गाँवों पर किए गए शोधों ने पूर्ववर्ती औपनिवेशिक मान्यताओं को नकारा और नए सिद्धांतों को निर्मित किया।

साथ ही, ग्रामीण समाज एवं शिक्षा को गढ़ने में तात्कालीन राजनीतिक संरचना में किए गए नीतिगत परिवर्तनों ने भी अहम भूमिका निभायी। जहाँ एक तरफ, स्वतंत्रता के बाद भूमि सूधार कानून के आने से गाँव की सत्ता संरचना पर से अभिजात्य वर्ग की पकड़ ढीली हुई, वहीं दूसरी तरफ साठ के दशक से पंचायती राज व्यवस्था की शुरूआत होने से गाँव में लोकतांत्रिक व विकेन्द्रित शासन व्यवस्था को बढ़ावा मिला। इन सब के कारण, ग्रामीण शिक्षा का विकास हुआ और इसतक ग्रामीण आबादी कीपहुंच भी बढ़ी। हालांकि, इन सभी परिवर्तनों के बावजूद गाँव की सत्ता एवं शिक्षा पर वर्चस्वशाली वर्ग का ही प्रभाव बरकरार रहा। पारंपरिक हैसियत, आर्थिक संपन्नता, राजनीतिक प्रभाव तथा मजबूत संख्या बल वाली कोई जाति ही गाँव की प्रभुत्वशाली जाति बनने में अक्सर समर्थ होती रही। वहीं, वर्ग के आधार पर देखें तो गाँव की सत्ता उनके हाथों में होती जिनका ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधिपत्य होता (थॉर्नर, १९५६)।

यदि सत्तर के दशक के बाद की स्थिति का विश्लेषण करें तो गाँवों में एक अहम सामाजिक परिवर्तन की शुरूआत हो चूकी थी। यह हरित क्रांति का प्रभाव था, जिसके कारण गाँवों में एक नये वर्ग का उद्दभव शुरू हुआ। इस वर्ग ने गाँव और गाँव के बाहर की दुनिया के बीच संपर्क को बढ़ाने का काम किया क्योंकि इस वर्ग की सामाजिक और सांस्कृतिक गतिशीलता की आकांक्षाएं गाँव की हद में संतुष्ट नहीं होनेवाली थी। अतः गाँव की खेती से इन्होंने जो पूंजी बनाई उसे गैर-कृषि कार्यों और शिक्षा पर लगाया। नब्बे के दशक तक आते-आते इस वर्ग की सामाजिक स्थिति में बहुत बड़ा बदलाव आने लगा। साथ ही, गाँव के दलित-पिछड़े वर्ग में भी कई परिवर्तनों की शुरूआत हो गई। उदाहरण के तौर पर, दलित लोगों ने अपने पारम्परिक जाति आधारित व्यवसायों को छोड़ना शुरू कर दिया। वे गाँव में खेतिहर मजदूर या बंधुआ मजदूर के रूप में काम करने की मनाही करने लगे (जोधका, २०१२)। पिछड़े समुदाय के लोगों ने भी अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए गाँव के बाहर की दुनिया की तरफ रूख किया और उनका सीधा झुकाव शिक्षा कीतरफ हुआ।

बीसवीं सदी के अंत तक आते-आते, ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रति एक विशेष जागृति दिखाई देती है। हालांकि, इसके प्रति उतनी ही ज्यादा राजनैतिक उदासीनता देखने को भी मिलती है। क्योंकि आजादी के लगभग चालीस साल बाद,

राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ के माध्यम से ग्रामीण समाज के लिए केवल कामचलाऊ शिक्षा की व्यवस्था ही की जा सकी। अप्रशिक्षित शिक्षक, सुविधाविहीन विद्यालय और दिशाहीन शिक्षा के कारण, बीसवीं सदी के अंतिम दशक में ग्रामीण समाज का शिक्षा के प्रति मोहभंग भी दिखाई देता है क्योंकि शिक्षा के सार्वभौमीकरण की आड़ में उन्हे ऐसी शिक्षा दी जाने लगी जो किसी काम की न थी। इसके पीछेनब्बे के दशक में हावीनव-उदारवाद की नीति का भी प्रभाव रहा जिसने राज्य के विकास के एजेण्डे में संरचनात्मक परिवर्तन किये (सद्गोपाल, २०००), जिससे ग्रामीण समाज के विकास का मुद्दा पीछे चला गया है।

हालांकि, इक्कीसवीं सदी में शिक्षा के अधिकार अधिनियम के आने से ग्रामीण समाज और इसकी शिक्षा के विकास की के प्रति एक आस जगी, परन्तु इसके वर्तमान परिणाम बहुत उत्साहवर्धक नहीं हैं। यदि वर्तमान आंकड़ों को देखें तो ग्रामीण परिदृश्य के बच्चों की शिक्षा तक पहुँच में अच्छी बढ़ोत्तरी हो रही है लेकिन इसके साथ ही ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता पर गम्भीर सवाल भी उठ रहे हैं। ग्रामीण विद्यालयों के बच्चों की उपलब्धि परीक्षण से सम्बंधित वर्तमान अध्ययनों पर गौर करें तो यह जाहिर है कि ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा की स्थितिबहुत ही चिंताजनक है।

इसके साथ ही, आज के समय में वैश्वीकरण और प्रौद्योगिकी का गाँवों पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है जिसके कारण उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक संरचना में भी बदलाव हो रहे हैं। इन बदलावों को गाँवों के अस्मिता संकट से भी जोड़कर देखा जा रहा है (फ्रेडलैण्ड, १९८२)। इस विचार के अनुसार, ग्रामीण समुदाय अपनी जनसंख्या खो रही है और गाँवों में जो जन रह रहे हैं वे ज्यादातर बड़ी उम्रवाले ही हैं। युवा और वयस्क गाँव को छोड़ते जा रहे हैं। अब गाँव में वही जनसंख्या प्रमुख रूप से बच जाती है जिसने गाँव से बाहर न जाने का निर्णय ले लिया हो या फिर जिनके पास शहर में रहने का विकल्प नहीं है। इस बचीखूची जनसंख्या से सम्बंधित बच्चे ही गांव में शिक्षा लेने को मजबूर हैं।

इसतरहदेखें तो ग्रामीण समाज की शिक्षा का विषय बहुत उपेक्षित रहा है। औपनिवेशिक काल ही नहीं बल्कि आजादी के बाद भी, ग्रामीण आबादी के लिए शिक्षा को अधिक प्रासंगिक बनाने की दिशा में कभी-कभार ही आधे-अधूरे प्रयास किए गए। अभी भी,ग्रामीण समाज की शिक्षा मुख्य चिंता का विषय बनने के बजाय, हाशिए पर पड़ी हुई है।

संदर्भसूची :

1. आचार्य, परमेश (२०००). देशज शिक्षा, औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प. दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी।
2. एडम, डब्लू. व लॉन्ग, जे. (१८६८). एडमस रिपोर्ट आन वर्नाक्यूलर एजुकेशन इन बेंगाल एण्ड बिहार. कलकत्ता : होम सेक्रेटारिएट प्रेस।
3. कोह्न, बी. एस. (१९९०). ऐन एन्थ्रोपोलॉजिस्ट अमौंग हिस्टोरियन एण्ड अदर एसेज. दिल्लीः ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
4. जोधका, एस. एस. (२०१२). विलेज सोसायटी. कलकत्ताः आरिएन्ट ब्लैकस्वान।
5. थॉर्नर, डी. (१९५६). द एग्रेरियन प्रोस्पेक्ट इन इण्डिया. दिल्लीः युनिवर्सिटी प्रेस।
6. फ्रेडलैण्ड, डब्लू. एच. (१९८२). द एण्ड ऑफ रुरल सोसायटी एण्ड द फ्यूचर आफ रुरल सोशियोलाजी. रुरल सोशियोलॉजी, ४७(४)।
7. बेंते, ए. (१९८०). द इण्डियन विलेजः पास्ट एण्ड प्रेजेन्ट, इन ई. जे. हाब्सबॉम एट ऑल, पीजेन्ट्स इन हिस्ट्रीः एसेज इन ऑनर ऑफ डेनियल थॉर्नर. कलकत्ताः आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी।
8. सद्गोपाल, अनिल (२०००). शिक्षा में बदलाव का सवाल : सामाजिक अनुबंधन से नीति तक. दिल्लीः ग्रंथ शिल्पी।